शिक्षकों की कलम से

विगत अंक से हमने एक नया कॉलम शुरू किया है जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार तीन अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, आपसे एक छोटी-सी अपेक्षा होगी कि आप अपने अनुभवों को भी हमारे पास ज़रूर भेजिए।

1. सात पूँछ का चूहा..... रवि कान्त
2. नक्शों पर नज़रिया..... कमलेश उप्रेती
3. पत्तियों पर कार्यशाला..... अलका तिवारी

सात पूँछ का चूहा

रवि कान्त

शिक्षकों के साथ काम करते हुए कई बार राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसन्धान परिषद (NCERT) द्वारा विकसित एवं प्रकाशित कक्षा-1 की रिमझिम से गुज़रना हुआ। उसकी खूबियों ने हर बार मन को मोहा। अच्छे बड़े आकार के दो-दो पन्नों में इस कोने से उस कोने तक आराम से पसरी तस्वीरें, जिनके साथ सुकून से बतियाने का मन करता है। ऐसी कविताएँ जिन्हें कोई ठीक से सुना दे या हावभाव से करवा दे तो उन्हें भूलना नामुमकिन हो जाता है। कहानियों के साथ दी गई तस्वीरें ऐसी कि जिन्हें देखते ही पूरी कहानी मन के आकाश में झिलमिलाने लगती है।

फिर कविताएँ तो इस किताब में कदम-कदम पर टकरा जाती हैं। और कविताएँ भी कैसी, कभी उछलती-कूदती पकौड़ी की तो कभी आसमान छूते झूले की, कभी नटखट चूहों की टोली की तो कभी फरफराती पतंगों

की। कहानियाँ भी इसमें कुछ कम नहीं, उनके पात्र ऐसे जिनमें बच्चों का मन रमे, और सिर्फ पात्र ही नहीं घटनाक्रम इतने रोचक कि उन्हें बार-बार सुनने को जी चाहे। अभ्यास भी अभ्यास कम, कुछ सोचने, कुछ करने के रोचक काम ज़्यादा नज़र आते हैं। लेकिन जब पूरी किताब से गुज़र कर आखिर तक पहुँचता हूँ, 'सात पूँछ का चूहा' कहानी मन में अटक-सी जाती है। हर बार एक अनसुलझा-सा सवाल उठता है कि आखिर इस कहानी को पाठ्यपुस्तक में लेने की वजह क्या हो सकती है, पर इसका कोई ठीक-सा जवाब सूझ न पाता।

रामनरेश त्रिपाठी की यह कहानी कुछ इस तरह है कि एक सतपूँछी चूहा है, बाकी सभी चूहे एकपूँछी हैं। एकपूँछी चूहों का समूह सतपूँछी चूहे का मज़ाक उड़ाता है। सीधे-सीधे कोई कुछ नहीं कहता लेकिन सतपूँछी चूहा बाकी चूहों के व्यवहार से यह अच्छी तरह समझ जाता है कि उन्हें उसकी पूँछों से ऐतराज़ है। ऐसे में सतपूँछी चूहा उस समूह में शामिल होने के लिए हर बार अपनी एक-एक पूँछ कटवा कर आता है। लेकिन उसका मज़ाक उड़ाया जाना जारी रहता है। यहाँ तक कि जब सतपूँछी चूहे के पास एक पूँछ बचती है तब भी, और जब एक भी पूँछ नहीं बचती है तब भी। अपनी सभी पूँछें कटवा कर भी सतपूँछी चूहा, एकपूँछी चूहों के समूह में खुद को शामिल नहीं करवा पाता यानी उसकी दशा फिर वही की वही रह जाती है।

कहानी पर नाटक

इस अबूझी कहानी को समझने का अहम सुराग तब मिला जब एक प्रशिक्षण में कुछ शिक्षिकाओं ने इस पर नाटक करने का काम चुना। नाट्य-रूपान्तर करते समय उन्होंने कहानी में दो बदलाव किए। पहला नाई की जगह चूहे की माँ को रखा और बाकी चूहों के समूह को खेल के घण्टे में सामूहिक खेल खेलते दिखाया। खेल में शामिल चूहों के उत्साह, सतपूँछी चूहे द्वारा खेल में शामिल किए जाने की गुज़ारिश, समूह द्वारा उसे खेल से बाहर रखने व मज़ाक उड़ाने की घटना और सतपूँछी चूहे के रूआँसेपन के जीवन्त अभिनय ने मेरे सामने तुरन्त यह साफ कर दिया कि हो-न-हो इस कहानी का ताल्लुक समाजीकरण व सामाजिक बहिष्करण से है। हालाँकि यह बात कहानी में भी है लेकिन जितनी गहराई और सीधे तौर पर मैं इसे नाटक के दृश्यों से समझ पाया वैसा शायद कहानी को पढ़ते हुए नहीं समझ पाया था। इसके साथ ही एक नया सवाल भी खड़ा हो गया कि क्या यह कहानी समाजीकरण या समावेशन का कोई तरीका भी सुझाती है? क्या वह तरीका ठीक है?

नाटक करने के बाद हमेशा की तरह अध्यापिकाएँ इस पर बातचीत के लिए तैयार थीं। मेरे दिमाग में भी

बातचीत की शुरुआत का सवाल बिलकुल साफ हो चुका था – यह कहानी तो सामाजिक बहिष्करण के औज़ार के ज़रिए दबाव डालकर सामाजिक एकरूपता को स्वीकार करने की बात करती नज़र आती है। थोड़ी देर तक समूह में सन्नाटा छाया रहा। शायद कुछ के मन में यह सवाल रहा होगा कि पाठ्यपुस्तक में ऐसा कैसे हो सकता है। कैसे हमारे जैसे सांस्कृतिक बहुलता वाले देश में ऐसी कहानियों को पाठ्यपुस्तक में लिया जा सकता है। एक-दो अध्यापिकाओं ने मेरी बात पर सहमति जताई। लेकिन एक अध्यापिका ने ध्यान दिलाया कि सामाजिक एकरूपता को स्वीकार करने का दबाव बनाने की बात तो तब कही जा सकती थी जब कहानी के अन्त में चूहे के पास एक ही पूँछ बचती। इस कहानी अन्त में तो चूहा बगैर पूँछ का हो जाता है, यानी उसके पास एक भी पूँछ नहीं बचती। तो वह अन्त में बाकी चूहों जैसा कहाँ हुआ। और अन्त में उसे चिढ़ाया भी 'बिना पूँछ का चूहा' के नाम से ही जाता है। यह बात ठीक थी और मेरा शुरुआती सवाल ढेर हो चुका था।

पूँछ – एक सामाजिक प्रतीक

तो फिर बहुत वक्त से खदबदाते सवाल को समूह में रखा कि इस कहानी को कैसे समझें। मैंने पूछा कि "क्या यह कहानी चूहों की है?" इस पर कुछ अध्यापिकाओं ने कहा कि यह कहानी इन्सानों की है लेकिन इसमें पात्र की जगह चूहे दर्शाए गए हैं। यह कहानी इस पाठ्यपुस्तक में क्यों शामिल की गई होगी, इस सवाल पर किसी ने कहा कि बच्चों को स्कूल में अपने आपको समायोजित करने में कई बार कई वजहों से दिक्कत आती है, शायद उसकी वजह से यह कहानी चुनी गई हो। शायद यह सोचा गया हो कि इस कहानी की मदद से बच्चे समूह में

समायोजन का तरीका सीखें। फिर यह सवाल उठा कि कहानी के चूहे अगर बच्चे हैं तो चूहे की पूँछ को कैसे समझें। क्योंकि पूरी कहानी टिकी ही चूहे की पूँछ पर है। कहानी का नायक सतपूँछी चूहा है, उसकी पहचान सात पूँछों से है और पूरी कहानी में उसी की पूँछें कटती रहती हैं।

यहाँ तक आते-आते मुझे सूझा कि यह पूँछ असल में पूँछ न होकर एक स्तर पर व्यक्ति की पहचान का मामला बन जाती है। यानी पूँछ पहचान का प्रतीक है। तुरन्त यह भी याद आया कि जाति की पूँछ तो हमारे देश में पैदाइशी तौर पर सभी के साथ लगी रहती है, और इतनी मज़बूती से लगी रहती है कि आप धर्म बदल लो तो भी वह उखड़ने का नाम नहीं लेती। एक बार यह बात समझ में आते ही इस कहानी का अर्थ कुछ-कुछ समझ में आने लगा।

समूह में बातचीत जारी रखने पर अध्यापिकाओं ने अपनी बात को समझाने के लिए कुछ उदाहरण भी दिए, जैसे स्कूल में अगर कुछ बच्चों के नाक-नक्श या रंग-रूप अलग तरह के हों, या वे दूसरी भाषा बोलते हों, या भाषा बोलने का उनका लहज़ा व उच्चारण अलग हो, या उनकी जाति या धर्म अलग हों, या उनका खान-पान अलग तरह का हो, या विशेष योग्यता वाला बच्चा हो और बाकी दूसरे काफी सारे बच्चे एक ही समुदाय, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के हों तो कई बार इन बच्चों का मज़ाक उड़ाया जाता है और अपमानित भी किया जाता है।

पूँछ को पहचान के प्रतीक के तौर पर चिन्हित करने के बाद दूसरी अध्यापिका ने कहा कि कहानी तो यह कहती लगती है कि अगर आप सामाजिक दबाव में अपनी पहचानों को मिटाते जाएँगे तो आप पूरी तरह से पहचान-विहीन हो जाएँगे, इसके बावजूद ज़रूरी नहीं है कि आपको पहले से बना समुदाय अपने में शामिल कर ले। तो आपके पास रास्ता यही है कि अपनी पहचान को बचाए रखिए और जैसे हैं वैसे ही बने रहिए। इस पर यह सवाल उठाया गया कि कहानी के अन्त में तो सतपूँछी चूहा पूँछकटा हो गया यानी वह जैसा था वैसा तो नहीं बचा, तो क्या यह कहानी अच्छी या बुरी जैसी भी पहचान हो उसे बचाए रखने की बात करती है? यहाँ आकर बातचीत रुक गई कि बहुत सारी पहचानों के सन्दर्भ में इस कहानी को कैसे समझें। लेकिन यह बात तो समूह के सामने साफ हो गई कि इस कहानी का एक मकसद इस बात को सम्प्रेषित करना है कि सामाजिक दबाव में अपनी पहचान को कटवाना या मिटाना कोई ठीक बात नहीं है।

सामाजिक बहिष्करण या समावेशन

फिर देखा गया तो पाया कि अब तक जितने उदाहरण आए, उनमें दो तरह का बहिष्करण नज़र आ रहा

था। पहला, शारीरिक बनावट, रंग-रूप या किसी क्षमता या अंग की कमी के आधार पर और दूसरा, सामाजिक आधार पर। फिर सवाल यह उठाया गया कि यह कहानी शारीरिक बनावट के आधार पर बहिष्करण की बात कर रही है या सामाजिक आधार पर या क्या यह दोनों ही आधारों पर बहिष्करण की बात कर रही है। यह सवाल भी अनसुलझा ही रहा।

प्रशिक्षण में इतनी ही बात होकर रह गई। कुछ पुराने सवाल सुलझे तो कुछ नए सवाल खड़े हो गए, लेकिन यह बातचीत और कहानी मेरे मन में उमड़ती-घुमड़ती रही। बातचीत याद रह जाने की एक वजह तो यह थी कि बहुत दिनों से सुगबुगा रहे सवाल के जवाब की कुछ राह नज़र आने लगी थी। कहानी के नाट्य रूपान्तरण और उस पर हुई बातचीत ने मेरे सामने इस बात को एक बार फिर से शीशे की तरह साफ कर दिया। और यह भी कि शिक्षा में कार्यरत कोई भी सचेतन समूह जब किसी कहानी को नाट्य रूपान्तरण के लिए लेता है तो उसमें फेरबदल की काफी गुंजाइश रहती है

और यह गुंजाइश कई बार कहानी को ज़्यादा सार्थक सन्दर्भों से जोड़कर उसके अर्थ व असर को गहरा कर देती है।

बाद में जब दोबारा पूरी बातचीत पर लिखा व सोचा तो यह समझ आया कि चूँकि पूँछ भी एक शारीरिक अंग है तो एक स्तर पर तो यह कहानी शारीरिक आधार पर बहिष्करण की बात कर रही है और अगर हम पूँछ को पहचान के तौर पर लेते हैं तो दूसरे स्तर पर यह सामाजिक-सांस्कृतिक आधार पर बहिष्करण की बात कर रही है। यानी यह कहानी बहुपरती है, इसमें कम-से-कम दो परतें तो हैं ही। कहानी के ज़रिए बच्चों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के अहम मुद्दे को उठाने व उसके बहुपरती होने की बात को पहचानने के लिए पाठ्यपुस्तक निर्माता समिति को दाद देने को जी चाहा। लेकिन खुल कर दाद देने से पहले सोचा कि क्यों न इस कहानी को पाठ्यपुस्तक में शामिल करने वाली समिति की मंशा को ठीक से समझने के लिए कहानी के बाद दिए गए अभ्यासों को देखा जाए। अगर कहानी चुनने वालों ने इसके बहुपरती अर्थ व उसकी उपयोगिता को पहचान कर कक्षा-1 में लिया है तो इसकी झलक अभ्यास में भी नज़र आनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्नों के रास्ते पड़ताल

अगर यह कहानी पूँछ को सामाजिक पहचान के प्रतीक के तौर पर लेती है तो उसका कोई रास्ता कहानी में नहीं सूझता और यहीं पर अभ्यास में शामिल किए गए कामों के ज़रिए पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति की कल्पनाशीलता व गहरी सूझ कहानी के वितान को फैला देती है। समिति अपनी नीरसता के लिए बदनाम पाठ्यपुस्तकीय अभ्यास में ऐसे कामों को शामिल करती है कि वे सिर्फ अभ्यास न रह कर इस कहानी-अर्थ को गहराई व विस्तार देने वाले रचनात्मक व रोचक कर्म में तब्दील हो जाते हैं।

अभ्यास में तीन सवाल लिए गए हैं लेकिन उन्हें दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। पहले, सवालों को देखें:

1. चूहे ने बेकार ही सातों पूँछें कटवाईं, सात पूँछों से वह कितना सारा काम कर सकता था (फिर इसमें हाथी की चार सूँडों व बच्चे के चार हाथों से किए जा सकने वाले कामों के बारे में पूछा गया है)।
2. पूँछकटे चूहे के चित्र में रंगीन कागज़ चिपकाओ।
3. बिना पूँछ के वह क्या नहीं कर पाएगा?

यानी कहानी जिस जगह लाकर पाठक को छोड़ देती है, अभ्यास उससे आगे की राह दिखाकर कहानी व अभ्यास को मिलाकर एक मुकम्मल पाठ गढ़ देते हैं। पहले व तीसरे सवाल एक-दूसरे से एकदम उलट हैं लेकिन दोनों ही पूँछों के होने की अहमियत और उनके न होने की मुश्किलों को रेखांकित

करते हैं। दोनों सवालों में पूँछ की अहमियत को दर्शाने के लिए उसके उपयोग के बारे में पूछा गया है। पहले अभ्यास का पहला ही वाक्य यह साफ कर देता है कि यह कहानी इस पाठ्यपुस्तक में संयोग से नहीं बल्कि सोच समझकर ली गई है (वैसे तो कोई भी कहानी पाठ्यपुस्तक में संयोग से नहीं आती)। उसमें मुनादी कर दी गई है कि फालतू ही चूहे ने सातों पूँछें कटवाईं और यह मुनादी अभ्यास के आखिर तक बरकरार रहती है। तीन में से दो सवाल पूँछ कटवाने के फालतूपन के पक्ष में तर्क की बुनियाद रखते हैं और एक सवाल दोबारा पूँछ गढ़ने की तरफदारी करता है।

पहले और तीसरे सवाल में एक तरफ तो यह कहा गया है कि अगर एक पूँछ कुछ कामों को कर सकती है तो ज़्यादा पूँछों से ज़्यादा काम किए जा सकते हैं। इसी तरह पूँछ न रहने पर क्या-क्या काम करने की क्षमताएँ कम हो जाएँगी इसकी तरफ भी ध्यान दिलाया गया है। यहाँ पर जानबूझकर इस सवाल को छोड़ा गया है कि ज़्यादा पूँछों से क्या-क्या परेशानियाँ बढ़ जाएँगी क्योंकि अब मामला पूँछ का रहा ही नहीं, वह तो पहचान का हो गया है। और यहाँ पर इकहरी पहचान की बजाय बहुरंगी पहचान की तरफदारी की जा रही है। इन सवालों को ज़रा इस तरह से पूछकर देखिए तो अर्थ ज़्यादा साफ हो जाएगा। जैसे, कौन-सा व्यक्ति ज़्यादा बेहतर रहेगा – एक भाषी या बहुभाषी, अपने ही खानपान को कट्टरता से सही मानने वाला और इस आधार पर दूसरों के साथ भेदभाव करने वाला या सभी तरह के खान-पानों को स्वीकार करने वाला व उसमें रस लेने वाला आदि।

दूसरे सवाल में पूँछकटे चूहे के चित्र में रंग-बिरंगे कागज़ के टुकड़े चिपकाने के लिए कहा गया है। पाठ्यपुस्तक में बने चित्र में पूँछ की जगह खाली है। वहाँ पर यह सम्भावना है कि बच्चे चूहे की पूँछ भी बनाएँ

और वह भी रंग-बिरंगी और यह भी कि वे चूहे की एक से ज़्यादा पूँछें बनाएँ। मुझे हैरानी सिर्फ इस बात की है कि इसमें एकदम साफ तौर से यह क्यों नहीं कहा गया, "तुम्हें कितनी पूँछों वाला चूहा पसन्द है, रंगीन कागज़ के टुकड़ों से चूहे की उतनी पूँछें बनाओ।" अगर कहानी के केन्द्रीय मुद्दे, पहचान के सवाल को ध्यान में रखा जाए तो यह सवाल काफी अहमियत रखता है। यहाँ पर पूँछें बनाना प्रतीकात्मक तौर पर अपने लिए पहचान को गढ़ना है और इस पहचान में पहले से मिली पहचान तथा स्कूल व कक्षा में पाई जाने वाली अलग-अलग पहचानों का हिस्सा हो भी सकता है और नहीं भी। पूँछ बनवाने वाले सवाल की अहमियत इस वजह से भी है कि यह पहले से बनी बनाई पहचान को आँख बन्द करके जारी रखने की बजाय सामाजिक-सांस्कृतिक बहुल पहचान के पक्ष में तर्क गढ़ने से आगे बढ़कर बच्चे को खुद अपनी पहचान के घटक चुनने का व उसकी मदद से अपनी पहचान को गढ़ने का मौका देता है।

***

इस कहानी पर अपने कुछ अनसुलझे सवालों को सुलझाने की कोशिश पर इतनी बात करने के बाद मेरे मन में एक सवाल अभी भी बचा हुआ है कि यह कहानी जितना कहती है कहीं मैं इसमें उससे ज़्यादा देखने, पढ़ने व समझने की कोशिश तो नहीं कर रहा हूँ या फिर जितना मैंने देखा, पढ़ा व समझा, यह कहानी उससे भी कहीं ज़्यादा गहरी व अर्थवान है?

रवि कान्तः शैक्षिक सलाहकार के तौर पर विभिन्न संस्थाओं, अध्यापकों के साथ काम। शिक्षण सामग्री, पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तकों और प्रशिक्षण संदर्शिकाओं आदि का निर्माण, शैक्षिक शोध और अनुवाद। गणित शिक्षण में खास रुचि। जयपुर में निवास।
सभी चित्र एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित पाठ्यपुस्तक रिमझिम, कक्षा-1 से साभार।